ब्रह्मः विद्या. - कठोपनिषद, वल्ली-३, मन्त्र- 3-7, आत्म तत्त्व, जीव व देह.

कठोपनिषद के तीसरी वल्ली के तीसरे से सातवें मन्त्र व उनका अर्थ इस तरह है.

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु.
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मन: प्रग्रहमेव च.
शरीर को रथ जानिए; आत्मा रथ का स्वामी ‘रथी’ है.
मन लगाम हैं; बुद्धि रथ हाँकने वाला ‘सारथि’ है.

इंद्रियाणि हयानाहु र्विषयांस्तेषु गोचरान्.
आत्मेन्द्रिय मनोयुक्तं भोक्तेत्याहु र्मनीषिणः.
मनीषीगण इन्द्रियों को अश्व तथा इन्द्रिय गोचर विषयों को उनके विचरण के मार्ग कहते हैं.
तथा 'वह' जो 'आत्मा', मन तथा इन्द्रियों से युक्त है, वह भोक्ता है.

यस्त्व विज्ञान वान्भवत्य युक्तेन मनसा सदा.
तस्येन्द्रियाण्य वश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः.
जो मनुष्य ज्ञान से रहित है और जिसका मन सदैव अयुक्त अव्यवहित है, उसकी इन्द्रियाँ जंगली घोड़ों के समान हैं और वे रथ के सारथी की आज्ञा का पालन नहीं करतीं ।

यस्त्व विज्ञान वान्भवत्य मनस्कः सदाऽशुचिः.
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधि गच्छति.
वस्तुतः वह जो अज्ञानी होता है, अचेतन मना तथा सदा अशुचिमय होता है, वह उस (परम) पद को प्राप्त नहीं करता, वह संसार-चक्र में ही भटकता रहता है.

यस्तु विज्ञान वान्भवति समनस्कः सदा शुचिः.
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते.
''परन्तु जो ज्ञानवान् होता है, सचेतन मना तथा सदा शुचिमान् होता है, वह उस (परम) पद को प्राप्त करता है जहाँ से वह पुनः जन्म नहीं लेता.

अब इन मन्त्रों की विचारणा करते हैं.
यमराज जी, नचिकेता को जन्म पुनर जन्म और जन्म पुनः जन्म के अंध भंवर से मुक्ति का ज्ञान दे रहे हैं.
अंध भंवर का अर्थ है, वह भंवर जिसका किसी भी तरह, दृश्य, ध्वनि आदि से, पता भी न चले और जिससे कभी निकलने की भी संभावना न हो, और जिससे निकलने का रास्ता भी न हो. जब भी नदी आदि जगह भंवर बनते हैं, तो बाहर से दिखाई देते हैं. और कुछ भंवर बाहर से दिखाई नहीं पड़ते, लेकिन वहाँ रह रहे मल्लाहों को उनका अस्तित्व पता चल जाता है. मल्लाह नदी के राजा की तरह होते हैं, उनको नदी के हर रूप, और जल की शक्ति का भी अच्छी तरह पता होता है. एक साधारण सा नियम है, की यदि भंवर में फंस जाओ तो, कुछ भी विरोध न करो. हर भंवर एक शंकु की तरह होता है जिसका मुख विशाल और जल के अंदर जाते हुए वह छोटा होता चला जाता है. तथा अंत में एक बिंदु की भाँती हो जाता है. कुशल व हिम्मती तैराक जब भंवर में फंसता है तो, वह तब तक शांत रहता है. जब वह भंवर के बहुत पतले

हिस्से तक पहुँचता है, फिर पूरी क्षमता के साथ, जल के अंदर ही अंदर, भंवर से दूर चला जाता है और भंवर से बाहर निकल जाता है.
लेकिन माया के भंवर और नदी के भंवर में बहुत अंतर है. माया स्वयं में पूर्ण अंध भंवर है, जो न तो दिखाई देती है. चूंकि माया को ईश्वर की शक्ति प्रेरित करती है इसलिए वह न ही कहीं से कमजोर होती है, और ना ही जीव को इससे बाहर आने की इच्छा होती है. जीव की इच्छा उसके इन्द्रियां माया से प्रेरित हो कर, मन को माया में भटकाती रहती है. जीव मन के हाथों, इस जगत में आदि काल से भटक रहा है और अनंत काल तक भटकते रहने की सम्भावना भी है.

प्रभु यमराज, नचिकेता से कहते हैं कि जीव को जो देह मिली है उसे को रथ जानो, और जीवात्मा उस रथ का रथी है. रथी का अर्थ रथ का स्वामी और रथ पर बैठा यात्री जिसने उस रथ की यात्रा का मूल्य चुकाया है, जैसे कि जगत में जिसके पास अपना वाहन नहीं है अथवा अपने वाहन का प्रयोग नहीं करना चाहता, वह किसी अन्य वाहन की सेवा ले कर अपने गंत्वय पर पहुँचने का रास्ता चुनता है. उसे भी रथी कहते हैं. इस रथ की लगाम जीव का चंचलतम मन है. बुद्धि जो मन के ऊपर है अथवा मन से श्रेष्ठ है अथवा मन जिसके अंतर्गत कार्य करता है और मन जिसके निर्णयों की पालना करता है, वह बुद्धि इस रथ का सारथि है.

यमराज जी, नचिकेता को आगे बताते हैं, कि इन्द्रियां इस रथ के हयानाहु, अर्थात रथ पर जुते घोड़े हैं, जो कि यात्रा करते करते अपने विषय रुपी चारे को इस जगत रुपी चराहगाह में चर अथवा खा रहे हैं. यहां गोचर का अर्थ इन्द्रियों की चराहगाह है. रामचरित मानस में भी प्रभु राम ने अपने छोटे भाई लक्मण को यही कहा था, "गो गोचर जहां लघि मन जाई". अर्थात यह इन्द्रिय और इन्द्रियों कि चराहगाह, अर्थात जगत माया, जहां तक चली जाए, उस सब को तुम केवल माया ही जानो".

मनीषी गण, अर्थात वे सिद्ध विद्वान्, जिन्होंने अपने चिंतन, मनन से ईश्वर और माया दोनों का सत्य ज्ञान प्राप्त कर लिया है, बताते हैं कि, "आत्मेन्द्रिय मनोयुक्तं भोक्तेत्याहु ", आत्मा जो मन और इन्द्रियों से युक्त, वही इस जगत अथवा माया की भोक्ता है.

यहां यमराज जी ने सीधे न कहते हुए, मनीषियों के कथन का प्रयोग, करते हुए कहा कि “आत्मेन्द्रिय मनोयुक्तं भोक्तेत्याहु”. प्रभु यमराज को सत्य का पूरा ज्ञान है लेकिन नियम से बंधे होने के कारण, वह सत्य को सीधा नहीं कह पा रहे हैं. लेकिन यमराज जी, असत भी नहीं कह सकते, इसलिए मनीषियों की आड़ लेते हुए, इस गूढ़ ज्ञान से नचिकेता का परिचय करा रहे हैं अथवा यह ज्ञान नचिकेता के सम्मुख रख रहे हैं. “आत्मेन्द्रिय मनोयुक्तं भोक्तेत्याहु”, यहाँ यमराज जी ने, इन्द्रिय और मन को लिया, और इन दोनों को युग्म रूप से एक भोगशाला का अधिकारी अथवा कर्मचारी बताया और आत्मा को उस भोगशाला द्वारा प्रस्तुत वस्तुओं का भोक्ता बताया है. अर्थात इन्द्रयाँ जगत में अपने अपने विषय लगातार एकत्र करती रहती हैं जैसे चक्षु दृश्यों, रंगों, रूपों आदि को लगातार ग्रहण करते रहते हैं, श्रोत इंद्री विभिन्न ध्वनियों, गायन, स्वर, वार्ता आदि को ग्रहण करती रहती हैं. यह इन्द्रियां, केवल विषय ग्रहण करती है और इस ज्ञान को आगे मन को प्रेषित कर देती हैं. इन्द्रिय किसी तरह का निर्णय अथवा संकल्प आदि नहीं करती, वह एक गुल्लक की तरह होती हैं जहां धन केवल डाला जाता है, और कुछ नहीं किया जाता. मन इन्द्रियों की सूक्ष्म इंद्री है,

और इसका स्थान इन्द्रियों से ऊपर रहता है, इन्द्रिय मन के आधीन रहती हैं. यदि मन चाहे तो इंद्री को विषय लेने से रोक भी सकता है, अर्थात आखें खुली हों और स्वस्थ भी हों, लेकिन देख नहीं रही हों. कान बिलकुल स्वस्थ और खुले हुए हों, लेकिन सुन नहीं रहे हों, इन्द्रियों पर नियंत्रण का अधिकार, मन के पास होता है.

एक बार, एक पूरा परिवार घर में बैठ कर, एक धार्मिक चलचित्र देखने में तल्लीन था. बहुत मार्मिक प्रसंग चल रहे थे. सभी ने पूरे मन से देखा. जब लगभग आधे घंटे बाद, चलचित्र समाप्त हुआ, उसके बाद ही परिवार के लोग वहां से उठे, कि चलो अब थोड़ी चाय पानी और घर के कार्य भी कर लिए जाएँ. जैसे ही परिवार की ग्रहणी बाहर आयी, तो देखा पिछला दरवाजा खुला हुआ है, उसका कुंडा भी टूटा हुआ है, बगल के कमरे में सामान अस्त व्यस्त है, कमरे में रखी अलमारी भी खुली हुई है और कीमती सामान गायब है. उसने शोर मचाया, सभी परिवार जन दौड़े दौड़े आये, देखा कि चोर घर का कीमती सामान ले कर गायब हो चुके हैं.

ठीक बगल के कमरे में इतनी बड़ी तोड़ फोड़ व चोरी की घटना हो गई, और किसी को भी कोई आवाज़ आदि नहीं सुनाई पड़ी कि, दरवाजे का कुंडा कैसे टूटा, अलमारी कैसे खुली आदि आदि. अर्थात सभी का मन चलचित्र पर एकाग्र था, इसलिए आखें और कान केवल चलचित्र को ही देख सुन सकते थे, किसी को, और कुछ भी, सुनाई नहीं दिया.

एक बार एक बहुत सिद्ध व वृद्ध महात्मा प्रवचन कर रहे थे. उसमे कई गावों के लोग सम्मलित हुए. एक महिला ने देखा कि उसकी दोनों ननदें भी वहां आयी हुई है. वह महिला उनसे मिली और उस पंक्ति में स्थान ना होने के कारण उनसे अगली पंक्ति में उनके ठीक आगे बैठ गई. महात्मा जी प्रवचन दे रहे थे, और दोनों ननदें आपस में बहुत फुसफुसा कर कुछ बात कर रहीं थी. महिला का पूरा ध्यान अब पीछे बैठी ननदों की बातों को सुनने में एकाग्र हो गया. महात्मा जी की मण्डली ने जोर जोर से भजन गाये, और प्रवचन शुरू हो गया. इतने में महात्मा जी ने कोई हास्य बात कही. सिवाय तीन महिलाओं के सभी श्रोता, उस हास्य को सुन कर, जोर से हंस पड़े. दोनों ननदों का मन अपनी बातों में एकाग्र था और आगे बैठी महिला का पूरा मन पीछे बैठी ननदों की बातों को सुनने में था.

अर्थात मन के पास ही, इन्द्रियों को नियंत्रित करने का अधिकार है, और वह उनको नियंत्रित भी करता है. लेकिन मन के संकल्प और विकल्प केवल इन्द्रियों और इच्छाओं पर निर्भर होते हैं. इसी लिए यमराज जी, नचिकेता को बता रहे हैं कि, जो इस संसार को भोग रहा है, वह इंद्री और मन द्वारा विषयों को एकत्रित व संस्कारित कर, अर्थात क्या मन को अच्छा लगा क्या नहीं, उसे, उस भोक्ता, को प्रस्तुत करता है, जो उसे भोगेगा अर्थात उसका आनंद लेगा.

यमराज जी ने सूक्ष्म शरीर के तत्त्वों में से इंद्री व मन को अश्व और लगाम बता दिया, लेकिंग भोक्ता आत्मा किसी और को बताया. अब सूक्ष्म शरीर में कर्मेन्दिया, प्राण, चित्त, बुद्धि और अहम् कार ही बचे. इनमे से कर्मेन्द्रियाँ, प्राण तो सूक्ष्म शरीर के बाह्य तत्त्व हैं, मन उनके अधिकार क्षेत्र में नहीं आता, इसलिए मन उनसे कोई निर्देश नहीं ले सकता, जैसे कोई अधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारी से निर्देश नहीं ले सकते. इसलिए इसे आत्म तत्त्व नहीं कह सकते. अब बचे, चित्त, अहंकार और बुद्धि, इनमे से चित्त तो केवल कर्मों का संग्रह करता है, किसी भी तरह का

निर्णय नहीं लेता, और अहंकार अपने होने का अनुभव करता है, लेकिन निर्णय वह भी नहीं ले सकता. इसलिए अब केवल बुद्धि ही शेष बची और केवल बुध्दि ही मन से श्रेष्ठ है अथवा बुध्दि मन को निर्देश दे सकती है और निर्देश देती है. बुद्धि ही मन पर नियंत्रण रख सकती है.

बुद्धि, महा भूत अग्नि का सतगुण अंश है, इसलिए वह स्वयं में जड़ रूप है, जब तक उसे प्रकाशित अथवा चेतन रूप न मिले, वह कुछ निर्णय नहीं कर सकती. बुद्धि का कार्य निर्णय लेना होता है. इस शरीर में केवल बुद्धि ही सभी निर्णय लेती है, बाकी मन सहित सभी इन्द्रियां आदि उस निर्णय की पालना करते हैं.
सतगुण अग्नि के अंश से बनी, केवल बुद्धि में ही ईश्वर का ज्ञान रुपी अग्नि का प्रति बिम्ब आ सकता है. बुद्धि में ईश्वर का सत अंश प्रतिबिंबित हो कर, बुध्दि को चेतन मय कर देता है और बुद्धि प्रकाशित हो कर सूक्ष्म शरीर के सभी तत्त्वों को प्रकाशित कर देती है. इसी साभास बुद्धि को, अर्थात ईश्वर के प्रतिबिम्ब सहित, को यमराज जी ने आत्मा कहा है. वही वह भोक्ता है जो इस जगत को भोग रहा है और उसका आनंद व दुख दोनों भोगता है.

जो सूक्ष्म तत्त्व व इंद्री जिस महाभूत का अंश होती है, उसी महा भूत के तत्त्व को वह इंद्री अथवा सूक्ष्म तत्त्व, ग्रहण कर सकता है. जैसे चक्षु अग्नि तत्त्व के अंश से बनी इंद्री है, और सूर्य उसका अंशी है, इसलिए केवल चक्षु ही सूर्य के प्रकाश को ग्रहण कर, जगत को देखने का कार्य करती है. वह न तो सुन सकती है, ना ठन्डे व गर्म का अनुभव कर सकती है, न ही कोई स्वाद आदि चख सकती है अर्थात प्रकृति से रस नहीं ले सकती.

यमराज जी आगे बताते हैं कि जो भी तर्कहीन अतार्किक, अव्यवहारी, और अनुचित ढंग से ज़िद्दी हैं, वह अपने इन्द्रियों को मन से ऊपर रखते हैं और मन इन्द्रियों को नियंत्रित नहीं कर सकता. अर्थात उनकी इन्दिर्यां भी उस व्यक्ति की तरह, अनियंत्रित हो कर मन को अपने वश में कर लेती है. इस तरह वह शरीर कई तरह के मद, व्यसन, अस्थिर बुद्धि का बन जाता है. वह मन भी, रथ के सारथी के नियंतरण में नहीं रहता और अपने व्यसनों और इच्छाओं की पूर्ती के लिए ही एकाग्र रहता है. जैसे एक लोभी केवल धन के लिए एकाग्र रहता है, एक कामी केवल काम भोग के सिवाय कुछ नहीं सोचता, ठीक वैसे ही उस व्यक्ति का मन पूरी तरह इसी पर एकाग्र हो जाता है. वह अपना चित्त, बुद्धि और किसी भी तरह के नियम को अपने पार्श्व अथवा पीछे की तरफ रखता है, अर्थात उनको कभी नहीं देखता.

इस तरह अविवेकी व्यक्ति अपनी इच्छाओं, भोगों में अपने मन को इतना डुबो कर रखता है कि सिवाय उन भोगों की प्राप्ति के, और कुछ उसके मन में नहीं रहता.
वेद उपनिषद कहते हैं. “देहावसान समये चित्ते यद्य द्विभाव येत”, अर्थात जो इच्छा व संकल्प व ध्यान, जीव अपने देहावसान अर्थात देह छोड़ते समय करता है, जीव, को वही रूप व अवस्था अगले जन्म में मिलती है.

इस तरह वह जीव, हर जन्म में एक कदम और आगे बढ़ कर, और बुरा व्यसनी, कामी और पहले से भी अधिक भोगी रूप लेता है और किसी भी जन्म में मुक्त नहीं हो सकता. वह कभी परम पद को प्राप्त नहीं कर सकता और संसार के चक्र में घूमता ही रहता है. यही अंध भंवर है, जहां से वह जीव कभी निकलना ही नहीं चाहता और अपनी इच्छा से इस भंवर में आनंदित व

दुखी रहता है. जैसे एक जुआरी कभी जीत कर खुश और हार कर दुखी होता रहता है और जीतने के आशा में इतना खोया रहता है कि अपने परिवार का भी विनाश कर देता है. ठीक वैसे ही, वह जीव अपने को नष्ट करने में व्यस्त रहता है.

यमराज जी नचिकेता को आगे बताते हैं, "यस्तु विज्ञान वान्भवति समनस्कः सदा शुचिः", जो विज्ञान सहित ज्ञान को धारण करते हैं अर्थात ज्ञानवान होते हैं, सचेतन मना अर्थात जड़ संसार पर आकर्षित व मोहित नहीं होते, और सदा शुचिमान् होते है, शुचिमान का अर्थ है, अपने मन को लगातार ईश्वर के तात्विक ज्ञान से स्वच्छ रखते हैं, वही परमपद की प्राप्ति की अपेक्षा कर सकते हैं और प्राप्त करते हैं.

यमराज जी ने कहा विज्ञान सहित ज्ञान अर्थात वह ज्ञान जो पूरी तरह से दृढ़ हो चूका हो, अर्थात किसी भी तरह का संशय अथवा प्रश्न न उठ सकते हों. ज्ञान के तीन रूप होते हैं,
१. अदृढ़ अर्थात सुन लिया था कभी, लेकिन सत्य है या नहीं कभी जानने की कोशिश नहीं की, इसलिए यह अदृढ़ है.
२ सामन्य, अर्थात कई लोगों से सुना कभी ठीक लगा कभी बिलकुल गलत.
३. दृढ़, अर्थात ज्ञान का प्रयोग कर के देख लिया, और पाया कि वह बिलकुल सत्य है.

एक बार एक बड़े डाकुओं के गिरोह को खबर मिली कि नगर सेठ के घर बहुत स्वर्ण आदि रखे हुए हैं और एक दो दिनों के अंदर ही वह स्वर्ण भण्डार, राजा की कोष में सुरक्षित पहुँच जाएंगे. उन्होंने उसी रात डाका डालने की सोची. दिन ही दिन में सारे डाकू भेष बदल कर शहर में घुस गए और अलग अलग जगह जा कर नगर वासियों में मिल गए. एक छोटा डाकू मंदिर के प्रांगण में सफाई का काम करने लगा. डाकुओं को सख्त निर्देश थे कि किसी भी प्रवचन आदि को नहीं सुनना, केवल काली माँ ही उनकी देवी है. इसलिए सभी अपने पास कुछ रुई भी रखते थे कि जब ऐसा हो तो कान में रुई लगा लें. मंदिर में प्रवचन चल रहे थे, जब तक छोटा डाकू अपने कान में रुई लगाता, आचार्य जी की बात उसे सुनाई दे गई कि गंधर्वों, देवताओं, यक्षों, देवियों के शरीर दिव्य होते हैं, उनके शरीर की छाया नहीं बनती.

रात को डाकुओं ने नगर सेठ का सारा स्वर्ण भण्डार लूट लिया. हलके अँधेरे का लाभ उठा कर उसे छिपा दिया, क्योंकि वह बहुत भारी था, इसके लिए बैलगाड़ी आदि चाहिए थी. स्वर्ण भण्डार को छिपा कर वह भी नगर में छिप गए. नगर के दरोगा को बहुत बड़ा झटका लगा उसने सारे नगर के रास्ते बंद करवा दिए. और अंदाजा लगाया कि सारे डाकू अभी नगर में ही होंगे. नगर बहुत विशाल था और बहुत नागरिक भी थे. हर घर की तलाशी नहीं ली जा सकती थी. दरोगा को मालूम था कि सभी डाकू काली को बहुत मानते हैं, तो उसने एक कलाकार को काली माँ का रूप धर रात को कई जगह घुमाया, और वह जोर जोर से बोल रहा था, मैं काली हूँ, तुमने जो स्वर्ण लूटा है, वह मेरा है, तुम तत्काल स्वर्ण को बाहर मार्ग पर रख दो, वर्ना मैं सबको भस्म कर दूँगी. वह कलाकार उस जगह भी पहुंचा जहां डाकू छिपे थे, डाकुओं का सरदार डर गया, कि स्वयं माँ बोल रही है. तब उसने सारा सामान मार्ग पर रखने का मन बनाया. तभी उस छोटे डाकू को, अदृढ़ ज्ञान अर्थात, उस आचार्य की बात याद आ गयी कि, देवताओं की छाया नहीं बनती, और उसने देखा कि उस कलाकार कि तो चाँद की रौशनी में छाया बन रही है. तो उसने सरदार से बोला, कि वही कोई आदमी ने रूप धरा हुआ है. तो सरदार और कुछ डाकू कुत्ते भौंकने की आवाज़ निकालने लगे और वह कलाकार डर के मारे भाग गया.

इस तरह उस छोटे डाकू के ज्ञान को, जब उसने आचार्य जी से सुना, वह केवल अदृढ़ ज्ञान था अर्थात केवल सुना हुआ ज्ञान था. उस ज्ञान को प्रयोग कि कसौटी पर परख कर देखा, तो वह ज्ञान दृढ़ भी हो गया और विज्ञान सहित, अथवा प्रयोग करके देख भी लिया, कि वह ज्ञान बिलकुल सत्य है.

इसी तरह का ज्ञान यदि कर्म, ईश्वर और ज्ञान में हो, वही ज्ञान किसी व्यक्ति को ज्ञानवान बनाता है, वर्ना बिना विज्ञान के वह ज्ञान केवल कथा कहानी ही मानी जायेगी और परम पद कि प्राप्ति भी संदेहास्पद ही होगी.

यमराज जी के दिए ज्ञान का चिंतन करें तो प्रश्न यह उठता है कि मुक्ति किसे मिलती है, अर्थात देह व सूक्ष्म, देह में वह कौन है, जिसे मुक्ति मिलती है.

तत्त्व दृष्टि से विचार करें तो यहाँ दो तत्त्व अर्थात वस्तुएं हैं,
१. रथ.
२. रथी.
तीसरा और कोई तत्त्व इस कथा में नहीं है.
रथ के भाग हैं,
१. स्वयं स्थूल रथ, जिसमे पहिये, आदि पूरा ढांचा अथवा पूरी संरचना शामिल है.
२. उसमे लगे अश्व, इन्द्रियां, जो उस रथ की ऊर्जा हैं और रथ को हिलने डुलने और आगे ले जाने के लिए गति देते हैं.
३. अश्वों पर कसी लगाम. अर्थात मन, जो उन अश्वों के परिचालन व नियंतरण के लिए होती है.
४. सारथी, जो लगाम थाम कर अश्वों को नियंत्रित करता है और इस तरह रथ को रथी के गंतव्य तक पहुंचाता है.
यह चारों भाग रथ के हैं.

रथी अपने में स्वयं पूर्ण है, उसी की ऊर्जा से यह रथ चलता है.

एक दृष्टान्त है. एक बहुत धनाढ्य व्यापारी ने देखा कि उसके गावों में शहर तक आने जाने की कोई अच्छी व्यवस्था नहीं है, सभी लोग अधिकतर पैदल ही जाते हैं. उसने सोचा कि एक परिवहन सेवा शुरू की जाए, ताकि लोगों की इस जरूरत से कुछ लाभ भी कमा सकूं. उसने अपने शहर के मित्र व्यापारी के साथ मिल कर इस योजना में काम शुरू किया, और 4 पुराने ट्रकों को खरीद कर बस जैसा बनाया. फिर सारा खर्चा, आदि का आकलन किया, जैसे बस की कीमत पर सूद, रख रखाव का खर्चा, वहां चालक और परिचालक का वेतन, ईंधन आदि का खर्चा और अपना लाभ जोड़ कर देखा. तो उन्होने आंकलन किया कि यदि आधे लोग भी भर कर शहर जाए और वापस आये, तो केवल 10 रूपए में एक तरफ़ा किराया और दोनों तरफ का एक साथ किराया १५ रूपए लेने से उनको अच्छा लाभ हो सकता है.

लोगों ने जब बस को देखा और किराया देखा तो उनको यह ठीक ठाक लगा, और सुविधा पूर्ण भी लगा. बसें गावों से शहर और शहर से गावों आने जाने लगी.

अब इस कथा पर तत्त्व दृस्टि से विचार करते हैं.
क्या उस परिवहन व्यवस्था के वाहनों को ऊर्जा उन दो व्यापारियों से मिल रही है?

क्या उन वाहनों के चालक व परिचालक दलों का खर्चा, वे व्यापारी कर रहे हैं?
क्या उन वाहनों का क़र्ज़ व खर्च, वे व्यापारी चूका रहे हैं?
यह सब उस वाहन व्यवस्था का हिस्सा है, जिसे यमराज जी रथ कह रहे हैं.

और रथी, वे यात्री हैं जो इन रथों पर सवार हो कर अपने गंतव्य तक की यात्रा करते है, उन्ही के धन रुपी ऊर्जा से यह वाहन व्यवस्था चलती है.
ठीक इसी तरह आत्म तत्त्व की ऊर्जा से यह देह रुपी रथ व इसकी व्यवस्था भी चल रही है.

यमराज जी ने नचिकेता से कहा कि इंद्री, मन, बुध्दि आदि सब केवल रथ के सारथि हैं, अर्थात वे इस स्थूल शरीर के साथ बंधे पांच महाभूत के सतगुणी अंश हैं, अर्थात वे भी जड़ प्रकृति का ही अंश हैं.
मुक्ति जड़ को नहीं मिलती. मुक्ति रथी को मिलती है. अर्थात जब रथ अपने लक्ष्य पर पंहुच जाता है, तो रथी वहाँ उतर कर रथ को, सारथि घोड़े समेत वापस भेज देता है.

मुक्ति किसे मिलती है, वेद कहता है, मुक्ति पुरुष को मिलती है, जड़ देह को नहीं.

एक दृश्टान्त भी है कि एक बार एक बहेलिया राजा के दरबार में, एक दुर्लभ पक्षी का जोड़ा, एक सुन्दर से पिंजरे में लाया. राजा उसे देख कर प्रसन्न हो गया और तुरंत उसे खरीद लिया. इतने में राज गुरु आ गए, उन्होंने उन दुर्लभ पक्षियों को देखा, और राजा से निवेदन किया कि, इसे मुक्त कर दिया जाए.
राजा ने बहेलिये को राज गुरूजी का अक्षरसः आदेश दिया कि, इसे मुक्त कर दो. बहेलिए ने कहा महाराज पिंजरा तो मुक्त ही है, जहां है अपने आप पड़ा रहेगा. राज गुरु ने बहेलिये से कहा, मुक्ति चेतन की होती है, जड़ की नहीं. आप पिंजरे को उद्यान में लेजा कर पक्षियों को मुक्त कर दो.
यमराज जी ने नचिकेता को शिक्षा देते हुए कहा था कि, आत्मेन्द्रिय मनोयुक्तं भोक्तेत्याहु र्मनीषिणः.
अर्थात जो इस इन्द्रियों और मन के कर्म को भोगता है, वह आत्म तत्त्व है. यहां यमराज जी ने बुद्धि को भी इन्द्रियों और मन से अलग कर आत्म तत्त्व के साथ रख दिया. अर्थात बुध्दि भी आत्म तत्त्व का हिस्सा है, जो कि जड़ है. और जड़ आत्म तत्त्व नहीं हो सकता.
यहां बुद्धि का अर्थ महत तत्त्व से है, समष्टि बुद्धि अर्थात सूत्रात्मा या ब्रम्हा जी. वही ईश्वर और माया के युग्म हैं अर्थात उनमे ही ज्ञान रुपी प्रतिबिम्ब जिसे ब्रह्म चेतन कहते हैं, प्रकट होता है. और उसी का अंश व्यष्टि बुद्धि अर्थात अलग अलग बुद्धियों में भी फलित होता है. बुद्धि में पड़े चेतन के प्रतिबिम्ब को कूटस्थ भी कहते हैं. यह बुद्धि और कूटस्थ इस जगत में अलग अलग नहीं हो सकते. और जगत से प्रथम मुक्ति इसी महत तत्त्व के अंश बुध्दि की होती है, और बुद्धि सूत्रात्मा में मिल जाती है, जैसे एक बूँद सागर में मिल जाती है. और बुध्दि में पड़ा कूटस्थ प्रतिबिम्ब, महत तत्त्व में पड़े ब्रह्म प्रतिबिम्ब से मिल जाता है. ब्रह्म प्रतिबिम्ब ही ईश्वर को कहा गया है. ये आत्मा का परमपद है और इसके बाद जीव जगत से पूर्ण मुक्ति पा जाता है.
इस तरह यमराज जी ने नचिकेता को आत्मा की मुक्ति का ज्ञान दे कर, पूरे जगत का कल्याण किया.
यही कठोपनिषद के इन मंत्रो का पारमार्थिक अर्थ है.